॥ श्रीमहावीरस्वामिने नमः ॥

'भुवनसुन्दरीकथा' की विशिष्ट बातों का संक्षिप्त अवलोकन

विजयशीलचन्द्रसूरि

[नागेन्द्रकुल के प्रसिद्ध आचार्य आर्यसमुद्र के शिष्य विजयसिंहाचार्यने संवत् १७५ में 'भुयणसुंदरीकथा'की रचना की । उसकी एकमात्र ताडपत्र-प्रति खम्भात के शान्तिनाथ ताडपत्र भण्डारमें मौजूद है । उस प्रतिके आधार से इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है, जो दो विभागोंमें प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी (PTS)से प्रकाशित है । उस ग्रन्थ में आनेवाली कतिपय विशेष बातों के बारेमें उक्त प्रकाशन में ही एक शोधलेख दिया गया है, वह ही यहां मुद्रित किया जा रहा है । मुझे सूचना दी गई कि उक्त कथाग्रन्थ सभी के पास पहुंच नहि पाएगा, अतः यह लेख अगर 'अनुसन्धान'में पुनः मुद्रित करवाओ तो ठीक होगा । अतः यह यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ।]

भुवनसुन्दरी की कथा का यह ग्रन्थ मुख्यतया अद्भुत रस का प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है । यहां वीररस, शान्तरस, करुणरस नहीं है ऐसा नहीं, किन्तु समग्र कथा का केन्द्रीय रस तो अद्भुत रस ही प्रतीत होता है। वैसे यह ग्रन्थ घटना-प्रचुर है; आप देखेंगे कि कथा शुरू होते ही विविध घटनाओं का दौर शुरू हो जाता है । एक घटना पूरी हुई भी नहीं कि उसमें से दूसरी घटना फूट निकलेगी ! फिर ये सभी घटनाएं अत्यन्त विस्मयजनक एवं चमत्कार-भरपूर भी हैं । जैसे जैसे इन चमत्कारिक घटनाओं को हम पढ़ेंगे, वैसे वेसे हमारे चित्त में अद्भुत रस का एक पूर उमड़ने लग जाएगा ।

फिर भी इस कथाग्रन्थ में कई बातें ऐसी भी है जिनका सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक व ऐतिहासिक मूल्यांकन होना चाहिए । इसका सांस्कृतिक एवं तुलनात्मक या समीक्षात्मक अध्ययन तो होना ही चाहिए, किन्तु अभी तो मैं, यहाँ, इस ग्रन्थ में बिखरे हुए कुछ तथ्यों या मुद्दों के प्रति अंगुलिनिर्देश ही करूंगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१)

इस कथाग्रन्थ का नाम भले 'भुवनसुन्दरी कथा' हो, किन्तु ग्रन्थ का अत्यधिक हिस्सा तो भुवनसुन्दरी के पिता वीरसेन को ही समर्पित है। वीरसेनचरित का प्रारम्भ होता है गाथाङ्क ८२२ (पृ. ७६) से; और अन्त होता है गाथाङ्क ७८९९ (पृ. ७२०) पर। अर्थात् ८९४४ गाथा-प्रमाण वाले ग्रन्थ की अन्दाजन ७००० से कुछ अधिक गाथाएं तो वीरसेन को ही नायक बनाये हुई हैं। वास्तव में यह कथा नायिकाप्रधान न होकर नायकप्रधान लगती है; अथवा होनी चाहिए। और तब इसका नाम होगा 'वीरसेणकहा' या 'वीरसेणचरियं' फिर भी कर्ता ने इसको नायिकाप्रधान रखकर 'भुवनसुन्दरीकथा' नाम क्यों दिया होगा ? प्रश्न होना स्वाभाविक है। लगता है कि ग्रन्थकार तिलकमञ्जरी, कादम्बरी, उदयसुन्दरी, कर्पूरमञ्जरी, लीलावती, विलासवती-जैसी नायिकाओं को प्राधान्य देकर रचे गये अद्भुत ग्रन्थों की परम्परा का अनुसरण करना चाहते हैं। यदि कादम्बरी का नाम 'चन्द्रापीडकथा' ऐसा होता तो विद्याविश्व उसके प्रति इतना अधिक आकर्षित होता ? शक्यता बहुत कम है। ऐसा ही अन्य कथा-काव्यों के बारे में भी कहा जा सकता है। ठीक उसी तरह, यदि इसका नामाभिधान 'वीरसेन-चरित' रखा गया होता, तो इतना प्रस्तुत न बनता, जितना 'भुवनसुन्दरी' नाम देने से बनता है।

(२)

अब देखें कुछ धार्मिक बातें :

१. जिन-प्रतिमा की विलेपनपूजा के लिए चन्दन, कपूर इत्यादि उत्तम सुरभि-द्रव्यों को पानी में लसोट कर उपयोग में लिया जाता है। पूजा-समाप्ति के बाद तो द्रव शेष रह जाता है, उसका उपयोग कोई गृहस्थ अपने देह-परिभोग के वास्ते नहीं कर सकता है, यह सामान्य प्रचलित नियम है। इस ग्रन्थ में जरा जुदी बात मिलती है। कुमार हरिविक्रम और भुवनसुन्दरी का प्रथम मिलन जब चन्द्रप्रभु-जिनालय में हुआ, तब कन्या की सखी हाथ में चन्दनद्रव का कटोरा लाकर कुमार को कहती है कि "जिनपूजा करने के बाद शेष रहा हुआ यह समालभन (विलेपनद्रव्य) आप अपने अंग पर लगाएँ बाह्यान्तर ताप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को मिटावें" (गा. ६८४, पृ. ६४)

२. सामान्यतः जैन साधु किसी भी व्यक्ति को सांसारिक कामनाओं की प्राप्ति का उपाय नहीं बताते हैं। फिर, वे वीतराग की ही उपासना करने का कहेंगे। किन्तु इस ग्रन्थ में एक से अधिक बार जैन मुनि ऐसा मार्गदर्शन करते दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, जब रानी विजयवती आचार्य निर्मलमतिसूरि की देशना सुनने के पश्चात्, सन्तानप्राप्ति की अपनी तीव्र कामना की पूर्ति के लिए पृच्छा करती है, तब आचार्यश्री उसको कूष्माण्डी (अम्बिका) देवी की आराधना करने से ईप्सित-प्राप्ति होने का कहते हैं (गा. ९२०-२२, पृ. ८५), और तदनुसार रानी के द्वारा की गई आराधना के जवाब में देवी वरदान भी देती है (गा. ९४२, पृ. ८७)।

३. ऐसा ही दूसरा प्रसंग नवकारमन्त्र के प्रभाव का आता है। जब वीरसेन-कुमार सरोवर के किनारे पहुँचता है, तब वहाँ अकलंक मुनि उसे पूछते हैं कि 'इस गम्भीर सरोवर को तू कैसे पार करेगा ? एक काम कर, नवकारमन्त्र का स्मरण कर, सरोवर का जल उसके प्रभाव से स्थगित हो जाएगा, और तू पार निकल जाएगा (गा. २५८७-८८, पृ. २३६-३७)।

४. नवकार के प्रभाव की दूसरी भी बात है, जो विस्मयजनक है। वीरसेन की भेंट घोर अरण्य में योगीन्द्र से होती है, तब योगीन्द्र उसको जुआ खेलने का आह्वान देता है। दोनों खेलने तो लगे, पर पूरा दिन बीतने पर भी कोई जीता नहीं। तभी वीरसेन ने नवकारमन्त्र का स्मरण किया, और उसके प्रभाव से वह जीत गया (गा. ५५४२-४४, पृ. ५०६-७)।

५. शासनदेव की उपासना किस ढंग से करनी चाहिए, उस विषय में यह ग्रन्थ बड़ा मार्मिक मार्गदर्शन देता है। वीरसेन एवं चन्द्रश्री का पता पाने के लिए विचित्रयश राजा जब चक्रेश्वरी के सामने ध्यान लगा कर बैठता है, तब स्वयं देवी उसे यह संकेत देती है कि "तुम्हें ध्यान धरना हो तो वीतरागदेव का धरो। हम तो सराग देवता ठहरे; हम सराग पूजा यानी गीत, नृत्य आदि से ही प्रसन्न होंगे, ध्यान धरने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं" (गा. ४०४३-४५, पृ. ३६९) ।

६. एक और विशिष्ट बात इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से मिलती है । हमारे यहाँ तीर्थ के या मन्दिर के नाम समर्पित की जानेवाली मिल्कत को 'देवद्रव्य' ही मानने की आजकल पद्धति है । यह मान्यता कब से प्रविष्ट हुई, पता नहीं । यह ग्रन्थ कुछ अलग ही बता रहा है । ग्रन्थकार श्रीविजयसिंहाचार्य प्रशस्ति में लिखते हैं कि "गोपादित्य श्रावक ने सोमेश्वरनगर का अपना त्रिभूमिक घर, श्रीउज्जयन्ततीर्थ के श्रीनेमिनाथ को भेंट किया, और उसने संघ को कहा कि मुनि-समूह के निवासार्थ यह घर मैं आपको अर्पण करता हूँ" (प्रशस्ति गा. १३-१४, पृ. ८१७) ।

यह तो स्पष्ट है कि मकान संघ को ही सौंपा जा सकता है। किन्तु वह जब नेमिनाथ के नाम भेंट किया जाता है तब तो वह, आज की धारणा के अनुसार, देवद्रव्य ही बन जाएगा; फिर उसमें मुनि-संघ का निवास कैसे हो सकता है ? । फिर भी ग्रन्थकार ने उस स्थान में निवास किया की है और इस ग्रन्थ का सर्जन भी वहाँ रहकर ही किया है, यह तो ऐतिहासिक तथ्य है ही (गा. १५-१६, पृ. ८१७) ।

७. मुखवस्त्रिका-मुँहपत्ती जैन साधु का एक आवश्यक उपकरण है । वह हाथ में ही रखा जाता था - ग्रन्थकार के काल में, ऐसा स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थ में पाया जाता है (गा. ५८९३, पृ. ५३७)

(३)

और अब देखें कुछ सांस्कृतिक बातों का उल्लेख :

१. अनुकूल बात सुनते ही शुकन की गाँठ बांधने का रिवाज (गा. ९४०, पृ. ८८); २. कुमार-अवस्था पाते ही (राजपुत्र का भी) चूला (शिखा) संस्कार व उपनयन संस्कार (गा. १७४९, पृ. १६०); ३. सामुद्रकशास्त्र (गा. १९२२-६०, पृ. १७६-१८०); ४. समुद्र में उतरने से पहले नेत्र, नासिका व कान को ढांकने की बात (गा. ३३५०, पृ. ३०६); ५. जहाज चलानेवालों की परिभाषा (गा. ३३६८-७३, पृ. ३०७-८); ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह के अवसर पर मातृका-निमन्त्रण, ब्रह्मभोजन, सर्व-देवों का पूजन, नगरदेवता की पूजा इत्यादि प्रक्रिया का सूचन (गा. ४२९१-९२, पृ. ३९२); ७. भरत-नाट्यशास्त्र के उल्लेखपूर्वक 'लय' का स्वरूप-वर्णन (गा. ५३४२, पृ. ४८७) इत्यादि ।

२. कौलधर्म या कापालिक सम्प्रदाय की बातें इस में अनेक जगह आती हैं । इस सम्प्रदाय के साथ सम्बद्ध शब्दावली-भैरवी, कात्यायनी, चण्डिका, योगिनी, वीरवर्ग, दाक्षायणी, योगी (अघोरगण), क्षेत्रपाल (दारुणदाढ), (पृ. ३१३-१९); कौलशासन, योगीन्द्र (पृ. ५०४-५-६); योगीन्द्र (अघोरगण), चामुण्डा, भैरवीमुद्रा, कात्यायनी (५१९-२८); योगीन्द्र, कौलागम, कौलधर्म, भैरव, कौल, उड्डीशशास्त्र, (पृ. ५४४); भैरवायतन, कापालिक, मठ, शूलपाणि (योगी), चण्डरुद्र (योगिशिष्य), त्रिशूल, भैरवपूजाविधि, भैरव, लोहार्गल(यक्ष)(पृ. ७६२-६६); यह सब ध्यानार्ह है । उक्त सभी सन्दर्भों के अवलोकन से सहज ही पता लगता है कि ग्रन्थकार के समय में कापालिक सम्प्रदाय का व्याप भारतवर्ष में बहुत रहा होगा ।

(४)

कुछ ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथ्यों का भी इसमें जिक्र किया गया है । उदाहरणार्थ,

१. पृ. ४१८ पर दशानन एवं राम के द्वारा प्रतिष्ठापित जिन-प्रतिमाओं का उल्लेख है (गा. ४५८६) ।

२. राम-रावण के निर्देश अन्यत्र भी देखे जाते हैं (गा. ४१५१, पृ. ३७९; गा. ५६३८ पृ. ५४१) । कृष्ण का भी उल्लेख यहाँ है (गा. ५९३७, पृ. ५४१) । इससे पता चलता है कि इस-भुवनसुन्दरी की कथा का घटना समय कृष्ण वासुदेव के बाद का होना चाहिए ।

३. इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है मथुरानगरीस्थित जिनस्तूप का (गा. ६५७०-७१, पृ. ५९९) । इस निर्देश से मालूम होता है कि ग्रन्थकार के समय में भी मथुरा में स्तूप का अस्तित्व था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. युद्ध में मारे गए सैनिकों की खांभी (भटस्तम्भ) बनाने के रिवाज़ का भी निर्देश गा. ७१३७, पृ. ६५१ में पाया जाता है ।

५. एक पौराणिक (जैन ऐतिहासिक) मान्यता का भी सूचन इसमें मिलता है : अंगइया (अंगदिका ?) नगरी के जिनालय की रत्नमय जिनप्रतिमा का रावण व राम के द्वारा प्रतिष्ठित किये जाने का सूचन (गा. ४५८६, पृ. ४१८) । वैसे स्तम्भन पार्श्वनाथ की रत्नप्रतिमा, जो अभी खम्भात में विद्यमान है, उसकी प्रतिष्ठा राम ने की थी, ऐसी जैन पौराणिक मान्यता है ही ।

(५)

ग्रन्थ में कहीं कहीं श्रीउमास्वातिजी एवं श्रीहरिभद्रसूरिजी के प्रतिपादनों की छाया भी देखने मिलती है । यथा-

१. विणयफलं सूस्सूसा गुरुसुस्सूसाफलं सुयन्नाणं ।
नाणस्स फलं विरई विरइफलं आसवनिरोहो ॥६०७२॥

संवरफलं च सुतवो तवरस्स पुण निज्जरा फलं तीए ।
होइ फलं कम्मखओ तस्स फलं केवलं नाणं ॥६०७३॥

केवलनाणस्स फलं अव्वाबाहो निरामओ मोक्खो ।
तम्हा कम्मखयाणं सव्वेसिं भायणं विणओ ॥६०७४॥

(भु.सुं. पृ. ५५४)

अब यह पाठ 'प्रशमरति प्रकरण (वा. उमास्वाति)' का देखें :

विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानम् ।
ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चास्रवनिरोधः ॥७२॥

संवरफलं तपोबलमथ तपसो निर्जरा फलं दृष्टम् ।
तस्मात् क्रियानिवृत्तिः क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम् ॥७३॥

योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षयान्मोक्षः ।
तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥७४॥

२. वा उमास्वाति कृत तत्त्वार्थसूत्र-सम्बद्ध अन्तिमोपदेशकारिका में आया हुआ यह श्लोक,-

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मबीजे तथा दग्धे नारोहति भवाङ्कुरः ॥८॥

'भुवनसुन्दरी' की निम्न गाथा में प्रतिध्वनित होता है-

दड्ढंमि जहा बीए परोहइ अंकुरो न पुण जम्हा ।
तह कम्मबीयदाहे न जम्ममरणंकुरा होंति ॥८६४२॥ (पृ. ७८८)

३. एक और भी पद्य है जो मेरी स्मृति के अनुसार श्रीउमास्वातिकृत माना जाता है,-

तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥

उसका भी छायानुवाद यहाँ मौजूद है :

तं नाणं पि न भण्णइ रागाई जेण उक्कडा होंति ।
सो कह भन्नइ सूरो विहडावए जो न तिमिरोहं ? ॥५९८०॥
(पृ. ५४५)

४. श्रीहरिभद्रसूरि-रचित 'पञ्चसूत्र' में 'दुक्कडगरिहा', 'सुकडासेवणं', 'रागदोसविसपरममंतो' इत्यादि पदावली प्राप्त होती है । इस कथा की

'जिणधम्मतत्तनाणं दुक्कडगरहा य सुकडसेवा य ।'
'कम्मविसपरममंतो भवविडविच्छेयणकुढारो ।'
(गा. २९२३-२४, पृ. २६७)

इन पंक्तिओं में उस पदावली के अंश पाये जाते हैं ।

५. इस पञ्चसूत्र के चतुर्थ सूत्र में 'व्याधितसुक्रियाज्ञात' नामक दृष्टान्त सोपनय लिखा गया है, जो 'विंशतिविंशिका' में भी मिलता है । इस कथा की ८६२४ से ८६२७ इन गाथाओंमें (पृ. ७८६-८७) यह दृष्टान्त, लगभग, पञ्चसूत्र-वर्णित पदावली में ही, मिलता है, जो बड़ा रोचक है ।

(६)

कितनेक रूढिप्रयोग या लोकोक्तिस्वरूप कहावतों का प्रयोग भी इस ग्रन्थ में किये गये है । जैसे-

१. 'घुणक्खरो नाओ' (गा. ३६०, पृ. ३४)

२. 'नो भज्जइ लउडी न मरइ ससओ' (गा. १३३२, पृ. १२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. 'केसरि-दोत्तडीनाओ' (गा. २३९७, पृ. २१९)

४. 'फोडावियं च जम्हा बिल्लं बिल्लेण बुद्धीए' (गा. ५६२९, पृ. ५१३)

५. हमारी भाषाओं में एक मुहावरा बहुत प्रसिद्ध है : "करमे-धरमे" 'करमे-धरमे' करना पडा; 'करमे-धरमे' हो गया, इत्यादि । यह मुहावरा यहाँ बार-बार प्रयोजा गया है । यथा-

'कम्मधम्मजोगा' (गा. ३६०, ११९३, १५५८, १७९६, ३०८६, ६७१०, ७७६५ वगैरह) ।

(७)

पृ. ६६८-६९ पर संक्षिप्त किन्तु विविधछन्दोमण्डित वसन्तऋतु-वर्णन (गा. ७३२५-२९) भी द्रष्टव्य है ।

(८)

बहुत सारे विशिष्ट शब्दप्रयोग इस में मिलते हैं, जो अभ्यासियों के लिये रसप्रद है । उदाहरणार्थ :

मन्दिर की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) के परिसर को भ्रमी (भ्रमन्ती) (गुजराती-'भमती' कहते हैं । उसके लिये यहाँ 'भवंतिय' शब्द (गा. ५२६९, पृ. ४८१) का प्रयोग मिलता है । दादरा (सीडी) के लिए 'दद्दर' (गा. ४८४५, पृ. ४४२) का प्रयोग मिलता है । 'भरवसो' शब्द 'भरोसा' के अर्थ में प्राप्त है (५८५१, पृ. ५३४) 'खडप्फडा' का प्रयोग किया गया है (गा. ५८५९, पृ. ५३३) । 'पिंढारा' शब्द हमारे यहाँ यह प्रकारकी ठगजाति के लिये प्रयोजाता जाता है । उसका प्रयोग यहाँ 'पिंडारा' रूप से मिल रहा है (गा. ६६७९, पृ. ६०९) । 'लड्डु' शब्द भी है, जो शायद 'लाड' वाचक है (गा. ८०८३, पृ. ७३७) । ऐसे और भी अनेक शब्दप्रयोग हैं, जो तज्ज्ञों के लिए ध्यानार्ह हैं ।

इन सभी शब्दों की सूचि बनाकर, यह लेख लिखने से पहले, भायाणी साहब को भेजकर उन से इसका विवरण पाने का मैंने सोचा था। किन्तु उनके दुःखद निधन से वह बात मन में ही रह गई ।

अन्य और भी रसप्रद शोध-सामग्री इस बृहत्काय कथाग्रन्थ में उपलब्ध हो सकती है । अभ्यासियों उसे प्रकाश में लाए ऐसी अभ्यर्थना ।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org